हरीष अरोड़ा के एकांकियों में राष्ट्रवादी चेतना

पूजा कौशिक,

शोधार्थी, हिन्दी विभाग

चन्द्र मोहन झा विश्वविद्यालय, शिलॉग

भारत में राष्ट्र शब्द का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से होता आया है। यजुर्वेद का दशम अध्याय इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। राष्ट्रवाद के लिए अंग्रेजी में नेशनलिज्म शब्द हैं नेशनलिज्म का हिंदी पर्याय राष्ट्रवाद किया जाता है। राष्ट्रवाद का जन्म 17 वीं और 18 वीं शताब्दी में हुआ। बीसवीं शताब्दी की घटनाओं ने राष्ट्रवाद की भावना को गति प्रदान की विश्व में राष्ट्रवाद सबसे शक्तिशाली है क्योंकि राष्ट्रवाद ने ही संस्थानवाद और साम्राज्यवाद का सफाया किया है। राष्ट्रवाद के मूल भी इतिहास में निहित है

राष्ट्रवाद की आधुनिक चेतना के उदय और विकास में इतिहास दृष्टि एक प्रमुख कारक है।राष्ट्रीय चेतना पर इतिहास का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है।इसी प्रकार इतिहास दृष्टि पर भी राष्ट्रीय चेतना का असर पड़ता है। 'भारत का सर्व समावेशी राष्ट्रवाद धर्म भौगोलिक क्षेत्र आदि का गुलाम नहीं है। भारतीय राष्ट्रवाद सकारात्मक है, जिसमें पारदर्शिता, सब धर्मों के प्रति सम्मान आदर तथा किसी एक धर्म को ऊंचा या नीचे ना समझने की भावना समाहित है। भारत में राष्ट्रीयता किसी अन्य राष्ट्रीयता के टकराव में खड़ी नहीं होती क्योंकि भारतीय 'वसुधैव कुटुम्बकम' का पक्षधर है। स्वामी विवेकानंद हिंदू धर्म की तरह से बात करते हुए शिकागो में बताया था कि यह एक धर्म है जो किसी को हीन नहीं मानता। विवेकानंद हर अर्थ में राष्ट्रवादी हैं क्योंकि उन्होंने अपनी राष्ट्रीयता को किसी संकुचित सीमा में नहीं झगड़ा।'[1]

राष्ट्र की परिकल्पना प्राचीन रही है क्योंकि भारत के प्राचीनतम वर्ग में वेदों में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग मिलता है। ऋग्वेद संहिता में और यजुर्वेद के संदर्भों से ज्ञात होता है कि क्षत्रिय द्वारा शासित भूभाग को राष्ट्र कहते हैं। यजुर्वेद के एक मंत्र में राष्ट्र के व्यापक रूप का आभास भी मिलता। जिसमें राष्ट्र में लोगों के साथ – साथ पशु और वनस्पति की भी पुष्टि की कामना की गई है। ब्राह्मण ग्रंथों में भी राष्ट्र शब्द की तरह– तरह से अपनी शैली में व्याख्या की गई है जैसे राष्ट्रीय जन संभव है, राष्ट्र शक्ति है, राष्ट्र अस्मिता है, राष्ट्र श्री है। इनसे भाव यही है कि एक राष्ट्र सुरक्षित में आता है जिसमें कई अमूर्त तत्व जैसे श्री, क्षेत्र आदि का होना अनिवार्य माना गया है। अतएव समृद्धि युक्त ओजस्वी और शक्ति संपन्न जनसमूह ही राष्ट्र बनाता है।[2]

हरीश अरोड़ा राष्ट्रवादी चेतना के प्रखर रचनाकार हैं। कविता, कहानी, एकांकी और अन्य विधाओं में नियमित रूप से लेखने करने वाले हरीश अरोड़ा का एकांकी संग्रह 'महाप्रयाण' राष्ट्रवादी चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करता है। इस संग्रह में चार एकांकी हैं – आत्मोत्सर्ग, महाप्रयाण, अर्द्धसत्य और त्यागपत्र। ये चारों एकांकी पौराणिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचे गए हैं। इन एकांकियों की मूल प्रवृत्ति भले ही पुराण और इतिहास रही हो लेकिन इसके केन्द्र में लेखक की दृष्टि राष्ट्रवादी चेतना पर रही हैं। इनके एकांकियों का मूल उद्देश्य सांस्कृतिक चेतना जागृत करना और राष्ट्र को सर्वोपरि मानने

की भावनाओं को जन–जन तक पहुंचाना रहा है। उन्होंने पारंपरिक मान्यताओं से पृथक राष्ट्रवादी सिद्धांतों की व्याख्या अपने पात्रों के माध्यम से की है।

अपने एकांकी 'आत्मोत्सर्ग' के अंतर्गत वे कैकयी के पात्र के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का संदेश देते हैं। वह राष्ट्र के समक्ष अपने पुत्र की आहुति देने से भी पीछे नहीं हटती। वह नारद जी से कहती है कि आप कहे तो जीवन पर्यंत अपने पुत्र भारत का मुख बिना देखूँ। अयोध्या के हित के लिए मेरा भरत इसे सहर्ष स्वीकार कर लेगा। लेकिन राम का बनवास क्षमा ऋषिवर – क्षमा! यह मुझसे कदापि संभव ना होगा।[3]

नारद के बहुत समझाने पर वह अंततः कहती है 'सूर्यवंश की माताएं अपने कुल के कर्तव्य और दायित्व से विमुख नहीं है देवर्षि अपने वंश की कीर्ति पताका को कदापि धूल में मिलने नहीं देंगे लेकिन इस कार्य हेतु राम ही क्यों? आप आदेश दें महर्षि! मैं भरत को अभी, इसी क्षण, आप के साथ भेजने को तैयार हूं। जिससे वह राक्षसों का इस तरह विनाशकारी अंत करेगा कि पुनः उनकी जाति का कभी जन्म ही ना हो सके। विप्रवर ! अभी भरत की भुजाओं में इतनी शक्ति है कि अपने वंश के वचनों के लिए, अपने वंश की कुल कीर्ति की रक्षा के लिए, वह समस्त राक्षस जाति का, एक से अधिक बार समूल नाश कर दें और फिर क्या भरत स्वयं के होते इस कार्य के लिए अपने ज्येष्ठ भ्राता को सेवा का मौका देगा? यह उसके लिए अक्षम्य अपराध होगा।'[4]

नारद जी द्वारा समझाए जाने पर कि रावण द्वारा की गई शक्ति की आराधना की काट हेतु शक्ति से आत्मिक स्नेही होना परम आवश्यक है। यह आत्मा का परमात्मा से तथा शक्ति का महाशक्ति से मिलन है। इसीलिए इस आराधना का उचित फल तभी संभव है जब राम को अपनी सबसे प्रिय माता के कैकेयी के स्नेह से वंचित होना पड़ेगा। 'हे देवी! क्षत्राणी इतिहास को जन्म देती हैं। इतिहास एक ऐसा इतिहास जो केवल क्षत्राणियों के आत्म शक्ति के बल से उत्पन्न होता है। यह समय सोचने का नहीं है इतिहास की नवीन चेतना के जन्म का है। अयोध्या के महा गौरवशाली इतिहास की चेतना का आर्य जाति के सांस्कृतिक चिंतन धारा की वैचारिक चेतना का, देव जाति के सृष्टि को वितरित परम आनंद वाद की महा मूर्ति का है। लेकिन इस योजना के परिणाम में संभवतयः राज परिवार और समाज दोनों का तिरस्कार आपको प्राप्त होगा।'[5] कैकयी किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं होती और वह कहती है यदि देव जातियों की राक्षसों से मुक्ति के लिए मुझे समाज और राज्य से बहिष्कृत भी होना पड़े तो कोई विकलता नहीं। नारद उन्हें समझाते हैं 'हे देवि इस निर्णय से ना केवल अयोध्या में अपितु सूर्यवंश के इतिहास में आपकी कुल कीर्ति नष्ट होने का भय है इतना ही नहीं आपके अपने पुत्र भरत द्वारा भी आप का तिरस्कार संभव है।'[6]

प्रत्युत्तर में कैकेयी कहती हैं – 'महर्षि सूर्यवंशी ललना अपने कुल की मर्यादा के लिए यदि अपना आत्मोत्सर्ग नहीं कर सकती तो धिक्कार है उनके जीवन पर कैकई की कीर्ति से कहीं अधिक सूर्यवंशियों की कुल कीर्ति का मान इस सृष्टि के लिए महत्वपूर्ण है। भरत के तिरस्कार का मुझे शोक नहीं। न ही अयोध्या नगरी की समस्त प्रजा का है। आप चिंता ना करें। मैं भी सूर्यवंश की क्षत्राणी रानी हूं। क्षत्राणी होने के दायित्व से मुक्त होकर मैं स्वयं को अपने पूर्वजों के समक्ष लज्जित नहीं करना चाहती। देवराज! सूर्यवंशियों का जीवन अपने लिए कदापि नहीं रहा। अपनी जाति की महान संस्कृति और विचारों की शुद्धता तथा आदर्शवादी कर्म का महत्व उनके लिए प्राणों से बढ़कर रहा है। राजवंश की मर्यादा के लिए उनके रक्त का प्रत्येक कण तप्त होकर अत्याचारियों के जीवन स्रोत को सुखा देने की क्षमता रखता है। देवराज यदि राक्षस जाति की आसुरी शक्तियों की दुर्जय

अभिकल्पना को तोड़ने मेरे राम के हाथों में लिखा है तो अपने राम की शपथ! अखंड राष्ट्र की वृहद और सशक्त शिलाओ की जड़ों में शून्यता भर देने वाले इन आतताइयों की राम के हाथों मुक्ति अवश्य होगी। ईश्वर के इस कार्य की योजना में मैं कैकय नरेश की पुत्री, अयोध्या नरेश की अर्धांगिनी और भरत की माता कैकेयी अपने जीवन में संपूर्ण त्याग का वचन देती हूं। यह वचन सूर्यवंश की क्षत्राणी का वचन है यदि अपने इस वचन से मुखावृत्त होऊं, तो सृष्टि के किसी लोक में मुझे स्थान ना मिले। देवर्षि आप इस वचन के साक्षी हैं और आप ही राम के हाथों राक्षस जाति के विध्वंस के भी साक्षी होंगे।'[7] यहाँ लेखक ने कैकेयी के विचारों को भारत की क्षत्राणी नारी की राष्ट्रीय चेतना के आलोक में प्रस्तुत किया है। वे चाहते तो परम्परागत् राम कथा में वर्णित कैकेयी के चरित्र को दिखाते लेकिन उन्होंने न केवल कैकेयी के चरित्र को एक आदर्श क्षत्राणी माता और रानी के रूप में प्रस्तुत किया वरन् भारतीय संस्कृति के विचारधारा के अनुरूप राष्ट्रधर्म के निर्वहन के लिए कैकेयी के माध्यम से एक आदर्श भी प्रस्तुत किया।

अपने अन्य एकांकी **'त्यागपत्र'** मे वे विदुर के माध्यम से राष्ट्रवादी चेतना को प्रस्तुत करते हैं। धृतराष्ट्र जब पुत्र मोह के कारण सही और गलत का विचार छोड़ देते हैं और बात भी हो जाते हैं अपने पुत्र की बात मानने के लिए भले ही वह विनाश की ओर ही क्यों ना ले जाने वाली हो। विदुर उनके समक्ष राष्ट्र हित हेतु खड़े होने का साहस करते हैं विदुर दुर्योधन को संबोधित करते हुए कहते हैं, 'कुरु वंश की धर्म भूमि पर हस्तिनापुर के नाश को आमंत्रित न करो दुर्योधन तुम्हारा यही मौन हस्तिनापुर के लिए काल है। युद्ध की यह विभीषिका हस्तिनापुर का भविष्य नहीं होगी। मैं हस्तिनापुर का महामंत्री हूं। युवराज! इसीलिए भलीभांति जानता हूं कि हस्तिनापुर का हित और अहित किन किन पक्षों में है। महायुद्ध का यह निर्णय प्रत्येक दृष्टि से हस्तिनापुर और कुरुवंश के लिए परीक्षम कारी होा।[8]

राष्ट्र हित को सर्वोपरि रखते हुए विदुर अपने मंत्रीत्व धर्म का पालन करते हुए राजा धृतराष्ट्र को भी कह उठते हैं 'महाराज एक ओर युवराज दुर्योधन संभवत हस्तिनापुर के सिंहासन को व्यक्तिगत संपदा समझ रहे हैं, दूसरी ओर आप अपने पुत्र मोह के अहम के बंधन से मुक्त होने में संकुचित है आप की तृष्णा आपकी महत्वाकांक्षा आप की कामना आप की अस्मिता इस मोह में बंधकर हस्तिनापुर के विनाश की सामग्री को एकत्रित कर रहे हैं।'[9] विदुर ने धृतराष्ट्र को राजधर्म का पालन के लिए सचेत किया।

दुर्योधन के यह कहने पर कि महामंत्री महाराज पर मिथ्या आरोप लगा रहे हैं विदुर कहते हैं, 'युवराज यह मिथ्या आरोप नहीं है यह सत्य वचन है और सत्य वचन सदैव कड़वे होते हैं कड़वे अनुभवों की तरह महाराज अपनी नेत्र हीनता के कारण निरर्थक तो नहीं हो सकते किंतु अपने कर्तव्य से विचलित हुआ राजा नेत्रों के होते हुए भी नेत्रहीन होता है और अपने युग की विडंबना ओं का वही मूल आधार बनता है महाराज अपने महत्व के अंधे पन को त्याग दीजिए महाराज अन्यथा संख्यात्मक क्षणों में जन्मी अंधी प्रति हिंसा का उत्तरदायित्व आप पर होगा महाराज। वर्तमान में मात्र जीवन की अभिलाषा ही ना कीजिए प्रत्युत्तर वर्तमान को भविष्य की आधारशिला के रूप में भी तनिक देखिए! यह राज सिंहासन किसी की व्यक्तिगत संपदा नहीं है। युद्ध की विनाश लीला के पश्चात मृत भूमि का संपूर्ण दायित्व युवराज दुर्योधन पर नहीं आप पर होगा। उस युद्ध भूमि पर गिरे हुए प्रत्येक शव का बोझ आपको उन्हीं कंधों पर उठाना होगा, जिन पर आज आपके पुत्र की लिप्साएं आसीन है।'[10]

विदुर के ये विचार निश्चित रूप से राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति को सर्वोपरि दिखाते

हैं। राजा यदि अपने राजधर्म के स्थान पर पुत्र मोह में फंसता है तो ऐसे में यह मंत्री का ही कर्तव्य होता है कि वह राजा को राजधर्म के लिए सचेत करे। विदुर बिना किसी भय के धृतराष्ट्र को इसके लिए कड़े शब्द भी बोलते हैं। वे राजकुमार दुर्योधन तक को कड़े शब्दों में चेतवनी देते हैं। विदुर जब देखते हैं कि दुर्योधन को युद्ध के परिणाम की कोई चिंता नहीं तो वह उसे जताते हुए कहते हैं, 'अपने अभिमान की शिला पर इतना अहंकार न करें युवराज! काल किसी का दास नहीं होता। यह जीवन के अभिशप्त क्षणों में परिवर्तन भी ला सकता है। यह युद्ध आपका व्यक्तिगत युद्ध होगा किंतु विजय पराजय आपकी व्यक्तिगत नहीं होगी , हस्तिनापुर की होगी महाराज आप हस्तिनापुर नरेश हैं इसीलिए व्यक्तिगत निर्णय को त्याग कर सोचिए। जीवन का पथ सत्य का ही पथ है और इस जीवन सत्य के पथ पर कोई भी पाथेय ही नहीं होता प्रत्येक व्यक्ति अधिक होता है उसे उचित पद का चयन स्वयं ही करना पड़ता है किंतु उस पथ पर केवल प्रज्ञा हुआ नहीं चल सकता है जहां उसे अपने एम कृष्णा इच्छा आदि को त्यागना पड़ता है।'[11]

धृतराष्ट्र को विवश देख विदुर पुनः उन्हें कहते हैं 'आप विवश हो सकते हैं, पितामह महाराज आप भी विवश हो सकते हैं किंतु हस्तिनापुर महामंत्री नहीं। हस्तिनापुर की रक्षा का दायित्व मैंने भी लिया है महाराज। यदि आप अपने दायित्वों को पूर्ण नहीं करते तो मुझे ही अपने दायित्वों का पालन करना होगा। महामंत्री केवल मंत्रीत्व करना ही नहीं जानता प्रत्युत वह अस्त्र चलाना भी जानता है, शस्त्र चलाना भी जानता है।कुरु वंश के विनाश की इस विष बेल को मुझे ही नष्ट करना होगा।'[12]

यह केवल विदुर का कर्तव्य नहीं है, ये विचार केवल एक मंत्री को सर्वोत्कृष्ट दिखाते हों ऐसा नहीं है बल्कि इन विचारों के आलोक में भारतीय राजनीति को देखा जाए तो निश्चित रूप के वर्तमान राजनीति के पक्षधरों को राजधर्म का ज्ञान प्रदान करते हैं।

अपने अन्य एकांकी 'अर्धसत्य' में श्री कृष्ण के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का बोध कराते हुए लिखते हैं कि राष्ट्र के विषय में सर्वप्रथम सोचना चाहिए चाहे उसके लिए व्यक्ति विशेष के समस्त हितों को न्योछावर ही क्यों न करना पड़े। यही कारण है कि जब गांधारी श्रीकृष्ण को श्राप देती है और कहती है –

कृष्ण !

कृष्ण !

हा कृष्ण !

तुम ही तो जड़ हो रण की।

(पीड़ा से भरे व्यंग्यात्मक स्वर में)

अहो।

देख लो मृतकों की नगरी को

कैसा यह सुंदर सिंगार!

देखो –देखो पंख लाल के महाकाल के

चील गिद्ध गा रहे गीत मृतकों पर

द्वार द्वार पर नमन किया अग्नि ने

कुरु वंश के मस्तक पर

छाए काले गहरे बादल

कृष्ण !

देखते यह छवि कितनी सुंदर और मनोरम।

अब कैसा अवसाद!

कृष्ण !

सुनो मां की वाणी

तुम वंचक और मर्यादा के हत्यारे हो

तुम्हें शाप है इस मां का

जैसे मेरा पुत्र मरा पीड़ा से

और मरे कोटिक योद्धा

तुमको भी सहनी होगी वैसी पीड़ा

और मृत्यु को पाओ।।[14]

और गांधारी यह कहकर रो पड़ती है।कृष्ण श्राप को स्वीकार कर लेते हैं। गांधरी विचलित हो उठती हैं और उसे क्षोभ होता है। वह कृष्ण से कहती हैं कि

हा कृष्ण।

मुझे धिक्कारो

क्यों तुमने स्वीकार किया यह शाप।

शाप मुझको दो।

मैंने जन्मा था दुर्योधन

प्राण प्रिय था

इसीलिए तो उसके अनुचित कर्म सभी

देख नहीं पाई गंधारी

मिथ्या की काली पट्टी आंखों पर बांधे।

मुझे शाप दो कृष्ण

दोष मेरा है।[15]

लेकिन कृष्ण गांधारी को कहते हैं कि माता वह श्राप नहीं वह तो उनके लिए वरदान है। वे जिस कार्य के लिए इस धरती पर आए उस कार्य के पूर्ण होने के पश्चात् उन्हें भी तो पुनः अपने लोक को जाना होगा।[16] वे गांधारी के मन को शांत करते हुए उन्हें सत्य का ज्ञान कराते हुए कहते हैं –

हे माते

मैं स्वयं नियति हूं

मेरी गति

मेरी विचारणा के बल पर चलती है

जीवन के पथ पर यह जो भीषण संग्राम हुआ

जितने भी योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए

वे नहीं मरे

अपितु जितनी भी बार गिरा

रणभूमि पर कोई योद्धा

वह गिरा कृष्ण

मैं सब में था

सब मुझ में थे

मैं सब में हूं

सब मुझ में

हैं कृष्ण यहां

सब कृष्ण यहाँ।[17]

यहां इस प्रकार श्री कृष्ण गांधारी को शांत करते हैं और उन्हें यह ज्ञात होता है कि राष्ट्र भावना से बढ़कर नहीं स्वार्थ कदापि नहीं हो सकता। श्री कृष्ण ने जो कुछ भी किया वह राष्ट्रहित के लिए किया। इसी कारण युयुत्सु, जिसके मन में निराशा के काले बादल छाए हुए थे उसका मन भी शांत होता है।

युयुत्सु ने भी कहा, हे प्रभु दिया आलोक मुझे चढ़ गए हृदय से कुंठा के काले बादल विदुर कहते हैं। इस विदुर को मिला मोक्ष कोटी शहर नमन और अंततः गांधारी को भी यह एहसास होता है। आभास होता है और वह कहती है यह सफल हुआ मेरा जीवन मैंने देखा नारायण का अभिराम रूप है नमन है।महामृत्यु के स्वामी कुरु वंश की कीर्ति पताका देकर प्रिय पांडव पुत्रों को मैं स्वामी संग चलो रे ने जीवन की इस नए मोक्ष में रहे शेष आशीष वचन पुत्र तुम्हें हैं। क्षमा अपने पुत्र युद्ध को संबोधित करके गांधारी कहती है श्री कृष्ण हाथ उठाकर आशीर्वचन प्रदान करते हैं।

हरीश अरोड़ा की पुस्तक का मुख्य शीर्षक जिस नाम से है उनका वह एकांकी 'महाप्रयाण' राष्ट्रीय चेतना का अद्भुत दस्तावेज है। इस एकांकी में महाकवि अनुराग के माध्यम से हरीश अरोड़ा रचनाकार के भीतर चलने वाले अंतर्द्वंद्व

को प्रस्तुत करते हैं। महाकवि अनुराग जब अपने महाप्रयाण महाकाव्य से संतुष्ट नहीं होते और उसके अंत को परिवर्तित करना चाहते हैं तो उनकी पत्नी चंद्रिका तथा चित्रकार सुकांत उन्हें समझाते हैं कि राष्ट्रहित सर्वोपरि है अनुराग ने जो कुछ भी किया वह राष्ट्रहित हेतु उचित था। किन्तु अनुराग इसे स्वीकार नहीं कर पाता। वह कहता है – "..... रचनाकार यथार्थ के धरातल पर जीता है सुकांत और वह उस धरातल की माटी से विद्रोह की कल्पना भी नहीं कर सकता और फिर मेरे महाकाव्य का कल्पित स्वरूप विद्रोही ही तो हुआ।"[18] तब सुकांत कहते हैं "नहीं अनुराग नहीं शांत मन से सोचो क्या देश के हित में बोले गए मिथ्य को हम स्वीकार नहीं करते, क्या हम उसे विद्रोह की संज्ञा देते हैं? उसी भांति कल्पना को व्यर्थता का परिधान मत ओढ़ाओ महाकवि – तुमने अपने महाकाव्य के उद्देश्य को पूर्ण किया है। तुमने जीवन के महाप्रयाण से भयभीत इस समाज को एक सशक्तता दी है और उसी सशक्त भाव से तुम्हारे उद्देश्य को सफलता मिली है।'[19]

कहीं–न–कहीं सुकांत के ये विचार लेखक के अपने विचार प्रतीत होते हैं। उनके इस एकांकी संग्रह में सभी एकांकियों का स्वर अन्ततः राष्ट्र के प्रति अपने सर्वस्व को अर्पण कर देना रहा है। इसीलिए सुकांत बार–बार अनुराग को जीवन के सत्य के परिचित कराता हुआ दिखाई देता है। वह महाकवि अनुराग को उसके कर्तव्य के प्रति निरन्तर प्रेरित करते हुए समझाता है कि किसी रचना की कल्पना भी कहीं–न–कहीं यथार्थ से ही उपजती है।

चाणक्यकालीन इस एकांकी में राष्ट्र की एकता और अखण्ड भारत के लिए आचार्य विष्णुगुप्त जिन योजनाओं को क्रियान्वित कर रहे थे और धनानंद जैसे क्रूर राजा को पदच्युत करने के लिए योजनाएं बना रहे थे वे प्रत्येक व्यक्ति से इस दिशा में सहयोग की अपेक्षा करते थे। इसीलिए अनुराग भी उनके इस महान कर्म में एक सहभागी ही था। आचार्य विष्णुगुप्त के गुप्तचर क्षणपक के माध्यम से महाकवि अनुराग को समझाते हैं– 'महाकवि आपके महाकाव्य महाप्रयाण के प्रशंसकों में आचार्य चाणक्य भी तो हो सकते हैं। आप का महाप्रयाण जीवन की मुक्तता का संपूर्ण सार लक्षित करता है और आचार्य उनकी अपनी नीतियों को उस पार में देख चुके हैं। ..... आपसे इतना अवश्य कहूंगा कि केवल अपनी समस्याओं से लड़ने वाला व्यक्ति प्रायः अपने आसपास के वातावरण में भी विचरती समस्याओं को ही भूल जाता है और वही समस्याएं मनुष्य के जीवन में एकाएक वार कर उठती हैं। अपने अंतर्मन से लड़ने की अपेक्षा राष्ट्र की दुविधा को समझने का प्रयास कीजिए।''[20]

अनुराग के मन पर छाया अंधकर धीरे–धीरे हटने लगता है। इसी क्षण चाणक्य का गुप्तचर सिद्धार्थक अनुराग को आचार्य का संदेश देते हुए कहता है –"महाकवि दूसरे के पुरुषार्थ को जगाने वाला कभी अपने पुरुषार्थ के प्रति चिंतित नहीं होता क्योंकि उसके रक्त के प्रत्येक कण में पुरुषार्थ जीवित होता है। अपने मन में शंका की स्थान मत दो। पुरुषार्थ के साथ जीवन जीने वाला मनुष्य ही विश्वास के योग्य होता है। महाकवि यदि जीवन में पुरुषार्थ ना होता तो आज आचार्य विष्णु गुप्त मगध की सीमाओं के भीतर मौन रहते हुए भी महत्वपूर्ण ना होते। उनके पुरुषार्थ ने ही उनके मौन के अपेक्षाकृत हमें मगध की सीमाओं के भीतर होने वाले महानाटक का महत्वपूर्ण पात्र बना दिया है। हां महाकवि यह नाटक ही है। यथार्थ का नाटक आपके महाप्रयाण का देश में पर्याप्त होने का नाटक और इस कार्य में गुरुदेव का प्रत्येक सहयोगी उसका मुख्य पात्र है कि जो अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति को सहज बनाना कलाधर की अपेक्षा किसी अन्य के बस में नहीं अब आपने अपने महाप्रयाण के माध्यम से भारत के समस्त राज्यों की सीमाओं के भीतर रहने वाले जन समुदायों के लिए जीवन के मोह

से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया आप धन्य हैं महाकवि आप महान हैं।''[21]

जब अनुराग पूछते हैं कि आमात्य राक्षस भी तो मगध के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह मोह मुक्त होकर कर रहे हैं। वे भी तो मगध के प्रति चिंतित हैं फिर उनका मगध से पलायन क्यों? तो सुकांत कहता है कि आचार्य केवल मगध के प्रति चिंतित नहीं हैं अपितु वह इन छोटे–छोटे जनपदों से बने अखंड राष्ट्र के स्वप्न को साकार करने के प्रति चिंतित हैं उनका स्वार्थ मात्र मगध का हित नहीं अपितु संपूर्ण भारत के एकत्त्व का महाभाव है।"[22] तब अनुराग कहता है – "मैं भूल गया था कि राष्ट्र का हित जीवन जीने में नहीं जीवन समझने में है। आज मैं समझा कि आचार्य क्यों राष्ट्र की अखंडता हेतु निस्वार्थ भाव से अपने जीवन को समर्पित कर चुके हैं।"[23]

उपर्युक्त समस्त संदर्भों से यही ज्ञात होता है कि हरीश अरोड़ा अपने एकांकियों के माध्यम से सदैव राष्ट्र को ही सर्वोपरि मानते हैं। राष्ट्रबोध ही उनकी रचना का मूल चिन्तन है। उनकी दृष्टि में स्वार्थ से उठकर देश हित में किया गया कार्य ही वास्तविक राष्ट्रवाद है।

संदर्भ

1. सकारात्मक भारतीय राष्ट्रवाद –प्रकाश दुबे– मीडिया विमर्श श्रीकांत सिंह पृष्ठ १७।
2. राष्ट्रवाद का भारत नामा भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद अभय प्रसाद सिंह पृष्ठ 6
3. आत्मोत्सर्ग, महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 67
4. आत्मोत्सर्ग, महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 68
5. आत्मोत्सर्ग, महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 71
6. आत्मोत्सर्ग, महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 72
7. त्यागपत्र, महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 85
8. त्यागपत्र, महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 85
9. त्यागपत्र, महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 86
10. त्यागपत्र, महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 87
11. त्यागपत्र, महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 87–88
12. त्यागपत्र, महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 90
13. अर्धसत्य, महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 53
14. अर्धसत्य, महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 54
15. अर्धसत्य, महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 54
16. अर्धसत्य, महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 55
17. अर्धसत्य, महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 55
18. अर्धसत्य, महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 56
19. महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 22
20. महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 25
21. महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 27
22. महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 30

23. महाप्रयाण– डॉ हरीश अरोड़ा पृष्ठ 33

Copyright © 2017, Pooja Kaushik. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.